ftUgsa fonzksg djuk Fkk(mUgksaus ugha fd;k

&ckcqjko ckxqy

¼ckS) lkfgR; lEesyu] egkM] 1971½

आप लोगों ने मुझे काफी प्रेम दिया है, इसे मैं भूल नहीं सकता। मैं भी आप लोगों पर तुकाराम के जैसा प्रेम करता हूँ। मैंने मेरे लेखन का नायकत्व आपको प्रदान किया है। आपका ही चरित्र गान करने का मैंने निश्चय किया है। क्योंकि आपका गीत आज तक किसी ने गाया ही नहीं। आपका गीत गाने वाला कोई नहीं था ऐसा नहीं है, परन्तु यह सही है कि जिन्हें आपके गीत गाने चाहिए थे, वे स्वतन्त्र नहीं थे। मेरा गला, मेरी आवाज स्वतंत्र है। इस कारण आपके गीत गाने का मैंने निश्चय किया है। इस दुर्भाग्यशाली देश में आपका और मेरा जन्म हुआ है और हम पहले से एक ही दुःख में बंदिस्थ थे। अब हम सबको प्रकाश मिला है। परन्तु आज भी अस्पृश्यता गई नहीं है। दुःख समाप्त नहीं हुआ है। इसलिए दलित साहित्य भी कभी समाप्त नहीं होगा। अस्पृश्यता, दासता, विषमता और दुःखों से दलित साहित्य का बैर है। जब तक अस्पृश्यता, दासता इस देश में और विश्व में रहेगी तब तक दलित साहित्य रहेगा, यह निश्चित है। मनुष्य की मुक्ति के गीत गानेवाला, मनुष्य को महान मानने वाला, वंश, वर्ग और जाति श्रेष्ठत्व का कठोरता से विरोध करने वाला जो साहित्य होता है, वह दलित साहित्य है। इसके पूर्व कभी मेरे एक मित्र ने हमें गालियाँ हमें दी थीं कि हम वंशवादी हैं। हम पहले से कहते रहे हैं कि ''हम वंशवादी कैसे हो सकते हैं? वंश और वंशवाद कितना भयंकर होता है, इसका हमें अनुभव है। इसलिए हम उसका विरोध करते हैं। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने जब से अपने आंदोलन का प्रारम्भ किया तब से हम वर्ण और वंशवाद का विरोध कर रहे हैं। इसके अनेक सबूत हमारे पास हैं।

हम तुच्छतावादी नहीं हैं। हमारे लेखन में किसी भी जाति के विरुद्ध प्रचार नहीं है। कुल मिलाकर हम इस विषम सामाजिक, मानसिक, तथा वैचारिक व्यवस्था के विरुद्ध हैं। यहाँ हमें काफी कठिन काम करना पड़ रहा है। यहाँ के सुधारकों एवं बुद्धिजीवियों को अपने–अपने शत्रु दिखाई दे रहे थे। उन्होंने जिनको शत्रु माना था अथवा जिनको वे शत्रु मान रहे थे, वे शत्रु उनके समक्ष थे। मार्क्सवादियों और समाजवादियों को उनके शत्रु दिखाई देते थे। अनेक राजनीतिक दलों को उनके दुश्मनों की पहचान थी, परन्तु हमारा दुश्मन तो अदृश्य है। वह ग्रन्थों में, भाषा में, शब्दों में, विचारों में, मन में है। हमारा दुश्मन शक्तिशाली और सर्वव्यापी होकर भी अदृश्य है। इन अदृश्य दुश्मनों के साथ हमारा युद्ध चल रहा है।

यह युद्ध वैसे काफी वर्षों से अर्थात् ब्रिटिश सत्ता जब यहाँ थी तब से शुरू है। अनेक हिन्दू समाज सुधारकों ने इस अदृश्य दुश्मन पर प्रहार किया है। परन्तु वे प्रहार शक्तिशाली नहीं थे। इन सुधारकों को हिन्दू परिवार, उनमें भी मध यवर्गीय हिन्दू परिवारों की उन्हें उन्नति करनी थी, वह उन्होंने की। उनके सुख–सुविधा की व्यवस्था की। यह सब कुछ करते समय उन सुधारकों को काफी छल सहना पड़ा। उन्होंने छल सहा भी और उसमें से मध्यवर्गीय हिन्दू परिवार की उन्नति का रथ आगे बढ़ता गया।

बड़े खेद से कहना पड़ता है कि, हमारे समाज सुधारकों ने सम्पूर्ण भारतीय समाज का विचार कभी किया ही नहीं। उल्लेखनीय है कि यूरोप के सुधारकों की तरह, यहाँ के सुधारक फाँसी पर नहीं गए। यहाँ परिवर्तन के लिए अनुकूल सत्ता नहीं थी। सत्ता अनुकूल होकर भी किसी भी समाज सुधारक ने सम्पूर्ण समाज की पुनर्रचना का एवं अस्पृश्यता नष्ट करने का विचार कभी किया ही नहीं। इसके पीछे उनकी जाति निष्ठता ही महत्त्वपूर्ण कारण था। उन्हें अपनी

जाति से बहिष्कृत किए जाने का डर था। उन्हें तो पहले से चली आ रही पारंपरिक व्यवस्था चाहिए थी; क्योंकि उस समाज रचना ने उन्हें जो चाहिए, वह दे दिया था। जिन्हें सब कुछ मिलता है, वे विद्रोह के विचार कैसे रख सकेंगे? और इसी कारण डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जैसे प्रखर एवं परिवर्तनकामी विचार किसी ने भी रखे नहीं।

भारतीय असन्तोष के जनक लोकमान्य तिलक और उनके साथी कार्य कर रहे थे, पर इन्हें भी बहिष्कृत किए जाने का डर था। यह उनकी सीमाएं थी और अपने भारतीय नेतृत्व का विशेष गुण भी। हमारा नेतृत्व आज भी शिक्षा और अन्य सुविधा न होने के कारण सीमित है। हिन्दू संस्कृति और धर्म तो सभी को समान अवसर और शिक्षा देने का विरोधी है। राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास देखा जाए तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि जब–जब किसी जाति को शिक्षा के अवसर मिलते रहे, तब–तब उस जाति में नेतृत्व निर्माण हुआ और यह नेतृत्व एक–दूसरे के विरुद्ध लड़ता रहा। उन्हें एक–दूसरे के विरुद्ध लड़ना नहीं चाहिए। इस तरह के प्रयास किसी नेता ने नहीं किए। सभी लोगों का विकास हो, देश की उन्नति हो ऐसा विचार और कार्य किसी ने किया ही नहीं है। गाँधी जी भी इसके लिए अपवाद नहीं है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के नेतृत्व में जैसे–जैसे अस्पृश्य संगठित होते गए, वैसे–वैसे ही राष्ट्रीय सभा के मंच पर अस्पृश्यता का प्रश्न उठने लगा। इतिहास में ऐसा ही घटित हुआ है। अनेक प्रकार के धर्मों ने यहाँ एक दूसरों पर आक्रमण किए। लेकिन समाज में बदलाव लाने की किसी की इच्छा नहीं हुई। इसका कारण यह है कि हिन्दू समाज की रचना ही ऐसी है कि यहाँ सामान्य लोगों को उचित दर्जा नहीं है। उन्हें मनुष्य माना ही नहीं जाता। बाकी लोगों को जीने के अधिकार हैं लेकिन इन्हें नहीं। जिन्होंने आक्रमण किए वे आए, गद्दी पर बैठे। सत्ता के कारण धन उनकी ओर अपने आप आता रहा है। हिन्दू समाज की रचना हमेशा राजसत्ता की पूरक रही है। हिन्दू के अनेक तत्त्व सामंतावाद के पोषक है। इस कारण अस्पृश्यता को खत्म नहीं किया गया। उसे जैसे थी स्थिति में रहने दिया। क्योंकि शोषण की सर्वोत्तम व्यवस्था अस्पृश्यता के निर्माताओं ने कर रखी थी। यह सब कुछ तत्कालीन सत्ता तंत्र के अनुकूल ही था।

हम पहले से कहते रहे हैं कि हिन्दू धर्म ने सामन्ती व्यवस्था में जन्म लिया है। उसने सामन्ती व्यवस्था में स्त्री और गुलामों को कुछ भी स्थान नहीं था। हिन्दू धर्म में भी उन्हें कहीं भी स्थान नहीं था।

स्त्री और गुलामों को स्थान देने के लिए आज तक किसी ने भी अधिक प्रयत्न नहीं किए। हिन्दू सन्तों के कार्य का आज काफी गौरव किया जाता है, परन्तु हिन्दू सन्तों ने भी स्त्री और शूद्रों के लिए कभी आंदोलन नहीं किए। बावजूद इसके स्त्री के बारे में उन्होंने गलत प्रचार–प्रसार किया। स्त्री के बारे में नफरत पैदा हो, इस प्रकार का वातावरण निर्मित किया गया है। अस्पृश्यों को उन्होंने अपवित्र माना। किसी ने भी अस्पृश्यता के संबंध में चिन्तन नहीं किया। उल्टे वे अस्पृश्यता को स्वीकृति देते रहे। अपने सुन्दर और सामर्थ्यशाली शब्दों के माध्यम से विचारों का जहर उन्होंने घर–घर में, मन–मन में पहुँचाया और मानवता को तोड़ने की कोशिश की। एक भी सन्त ने कर्मवाद तथा, पुनर्जन्म का विरोध नहीं किया। आत्मा, स्वर्ग, नर्क यह क्या है? यह कभी पूछा नहीं गया। अपने आस–पास का दुख भगवान ने दिया है अथवा सामन्ती व्यवस्था के कारण मिला है, यह कभी देखा ही नहीं गया। वैसे तो यहाँ के सन्त राजसत्ता से बँधे हुए थे। यहाँ के सन्त अर्थसत्ता एवं राजसत्ता के नौकर बनकर काम करते हैं, ऐसा चित्र दिखाई देता है। यहाँ के कुशल और क्रूर रचनाकारों ने कुछ ऐसी रचना की थी कि उस रचना को सन्तों ने मान्यता दी और बहुत कठोर पद्धति से स्त्री की निन्दा की। स्त्री को तो उन्होंने काफी विचित्र और अलग पद्धति से चित्रित किया है। पुनर्जन्म, कर्मवाद और मनुस्मृति के कायदे–कानून इन लोगों को मान्य होते हैं। दूसरी ओर वे सामन्ती व्यवस्था और अस्पृश्यता का पुरस्कार भी करते हैं।

यहाँ अनेक सन्त होकर गए। उन्होंने अपने–अपने ईश्वरों की आराधना की। यहाँ का समाज जैसा था वैसा ही रहा। अस्पृश्यता को मिटाने के प्रयत्न नहीं हुए। जिस प्रकार उच्चवर्गीय संतों एवं बुद्धिजीवियों ने अस्पृश्यता की समस्या पर कभी विचार ही नहीं किया, वैसे ही अस्पृश्यों ने भी कभी विद्रोह नहीं किया। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के आगमन तक अस्पृश्य समाज इस गुलामी को स्वीकृत रहा। जो गुलामी उन पर थोपी गयी थी, वह उन लोगों ने निर्माण की थी जिनके हाथों में धार्मिक, सांस्कृतिक राजसत्ता थी। ये सब अस्पृशों के समझ में नहीं आ रहा था। ये लोग यह मानकर जी रहे थे कि, पिछले जन्म में पाप किया था उसका परिणाम यह जन्म है। कम–से–कम आगे का जन्म ठीक मिले, इसलिए वे सब कुछ सहते रहे।

'दलित कभी विद्रोह नहीं करेंगे' इस प्रकार का वातावरण समाज निर्माताओं ने तैयार किया था। सत्ता, संस्कृति और शिक्षा से दलितों को दूर रखा गया था। मनुष्य प्रकृति का छोटा–सा आकार है। प्रकृति सतत गतिशील रहती है। सृजनशील भी रहती है। मनुष्य को भी सतत् गतिशील और सृजनशील होना चाहिए। मनुष्य का शरीर और उसकी आंतरिक शक्ति सृजन के लिए बेचैन रहती है। बेचैन मन सृजन नहीं कर सका तो वह परेशान रहता है। मनुष्य जानवर बनता है। मैं अनेक वर्षों से गाँवों में घूमता रहता हूँ। वहाँ मैंने देखा कि मनुष्य को मानवीय शरीर है, परन्तु वे दुःख और वेदना में जी रहे हैं। मानवी शक्ति, श्रम और बुद्धि का संहार देखकर मैं क्रोधित होता हूँ। यहाँ क्रोधित होकर भी उपयोग नहीं है। जिन्होंने यह सब षड्यंत्र किए हैं; उन्हें आनन्द मिलता होगा। मिली हुई लूट पर वे जी रहे होंगे। यहाँ दलितों को जहर देकर समाप्त किया गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी सत्ताएं यहाँ स्थापित होती रहीं।

मनुष्य को कभी तो सृजन करना चाहिए। अपनी आंतरिक शक्ति का इस्तेमाल करना चाहिए। मनुष्य के नाते जीना सीखना चाहिए। हाथ में हथियार लेकर जीने का मजा लेना चाहिए। यहाँ आदिवासी और घुमन्तू लोगों की ताकत बेकार में खर्च हो रही है। काम और क्रोध में यहाँ की शक्ति नष्ट हो रही है। यह देखकर बड़ी तकलीफ होती है कि मनुष्य का अवमूल्यन भारत से ज्यादा विश्व में कहीं नहीं हुआ है।

भारत के और विश्व के गुलामों में काफी अंतर है। इसका कारण यह है कि भारत छोड़कर विश्व के अन्य गुलामों ने विद्रोह किया है। मार्क्स का कहना है कि 'भारत छोड़कर अन्य देशों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।' लेकिन इस देश में दुःखों का कारण स्वर्ग में रहने वाला ईश्वर और अपना भाग्य माना जाता है। अथवा पिछले जन्म में पाप किया था इस कारण इस जन्म में दुःख मिल रहा है, ऐसी माना जाता है। यहाँ जिन्हें विद्रोह करना चाहिए था, उन्होंने वह किया ही नहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जीवन और मनुष्य दोनों का ह्रास होता गया।

ब्रिटिशों के आगमन तक संपूर्ण भारतीय जीवन ऐसा ही था। ब्रिटिशों के साथ यन्त्रयुग आया, नये विचार आयें। इस कारण यहाँ की संवेदना जाग्रत हुई। परन्तु निचले तबके के लोग शांत थे। आज भी रूढ़ियों और परंपराओं को ढोने वाली जनता शांत ही है। बाबासाहेब आंबेडकर के आगमन के बाद निचला तबका स्फूर्ति से उठ खड़ा हुआ। बाबासाहेब के विचारों और प्रेरणा से दलित साहित्य का जन्म हुआ।

दलित साहित्य बदले की भावना का साहित्य नहीं है। दलित साहित्य द्वेष एवं विषमता पैदा करने वाला साहित्य नहीं है। दलित साहित्य मनुष्यता का गीत गाने वाला साहित्य है। वह मनुष्य की मुक्ति का आह्वान करता है। इसकी ऐतिहासिक आवश्यकता है। इसलिए यह साहित्य अलग नाम धारण करता है। दलितों द्वारा लिखी कविता और अमेरिकन व्यक्ति द्वारा लिखी कविता कविता ही होती है। कविता के अच्छे, बुरे होने का सवाल बाद में आता है। यह निश्चित है कि यह जैसी है कविता वैसी ही है। दलित साहित्य के नामकरण के भी एक दो कारण हैं। एक

कारण आप खुद (दलित) है और दूसरा कारण आज तक का भारतीय साहित्य है। यहाँ आप लोग कैसे हैं, इस पर विचार होना चाहिए। वैसे तो आप बाबासाहेब के विचारों और आंदोलन से प्रेरित हैं। यहाँ जब चवदार तालाब का सत्याग्रह हुआ था, उस समय बाबासाहेब ने इस सत्याग्रह की तुलना फ्रेंच राज्यक्रान्ति से की तुलना की थी। चवदार तालाब सत्याग्रह के दौरान आयोजित सभी में समता, स्वतन्त्रता और भाईचारा व्यक्त करनेवाले विषय पारित किए गए थे।

महाड की सभा में बोलते समय बाबासाहेब ने कहा था कि, फ्रेंच राज्यक्रान्ति को बुरा कहकर यूरोप के इतिहासकारों ने आलोचना की थी। परन्तु मैं उस क्रांति को बुरा नहीं कहूँगा, कारण उस क्रान्ति से उत्पन्न हुए विचारों से यूरोप का भाग्योदय हुआ था। यूरोप का कल्याण हुआ था। बाबासाहेब का कहना था कि महाड की सभा से देश का कल्याण होगा।

आप लोग भी क्रान्तिकारक हैं। बाबासाहेब के विचार और आन्दोलन से आपने बहुत कुछ नकारने को सीख लिया है। आप लोगों ने रूढ़ियाँ, अन्धश्रद्धा, ईश्वर और धर्म को नकारा है। आप में यह नकारने की शक्ति ही बहुत कुछ है। नकार की यह शक्ति बहुत बड़े विचारकों में भी नहीं थी।

बड़े–बड़े सामजसुधारक भी बहिष्कार किए जाने के डर से घबरा गए थे। लोकमान्य तिलक ने लोगों के मतों के आगे झुक कर अपने आप को शुद्ध कर लिया था। आप लोगों ने मनुष्य को तोड़ने वाले संकेत जला दिए हैं। महाड के उस आंदोलन के दौरान आप लोगों ने अपूर्व हिम्मत दिखाई थी। जिस मनुस्मृति के आगे सभी शासक और सन्त नतमस्तक हुए थे, वही मनुस्मृति इसी महाड गाँव में जलाई गई थी।

अनेक अर्थों में आप लोग बड़े हैं। मार्क्स जिन क्रान्तिकारियों का वर्णन करता है, उन क्रान्तिकारियों के जैसे आप लोग हैं। इस कारण गौतम बुद्ध की परिभाषा में भी आप लोग सहज बैठते हैं।

आप लोगों में युग निर्माता की शक्ति है, इसका विश्वास हमें हुआ है। इसी कारण आपका ही नाम दलित साहित्य को दिया गया है। आप लोग आगे बढ़ने वाले हैं। भविष्य की मुट्ठी में जो बंद है, आप लोगों को उस मुट्ठी को खोलना होगा। परन्तु आज हमें ऐसा दिखाई देता है कि अनेक संस्थाएँ, अनेक राजनीतिक दल और व्यक्ति इतिहास की ओर भाग रहे हैं। इतिहास के नायकों से प्राण और प्रेरणा ले रहे हैं। इतिहास में बंदिस्त युद्ध और बैर को खोजकर बैर कर रहे हैं। भविष्य की ओर पीठ दिखाकर पीछे हटना जीवन्तता का लक्षण नहीं माना जाता है। पर उनका भविष्य पर विश्वास नहीं है। भविष्य पर अगर उन्हें विश्वास रखना हो तो उन्हें वर्गीय अहंकार से मुक्त होना पड़ेगा। उन्हें अपने वर्गीय अहंकार से मुक्त नहीं होना है, इस कारण वे इतिहास की ओर भाग रहे हैं। लेकिन आप लोग आगे जा रहे हैं, प्रकाश की खोज कर रहे हैं।

आप के पैरों तले वर्तमान है और आँखों के सामने भविष्यकाल है। आपका इतिहास, मनुष्य को मुक्ति देने वाला इतिहास है। आपका आदर्श डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जैसा ज्ञान पूजक इन्सान है और करूणा का सागर गौतम बुद्ध जैसा व्यक्तित्व।

इस देश में मनुष्य का भयंकर अपमान किया गया है। एक विशिष्ट व्यवस्था ने मनुष्य को चक्रव्यूह में फँसाकर मारा है। दलित साहित्य का महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य यह है कि वह मनुष्य को केन्द्र में रखता है।

दलित साहित्य मनुष्य की स्वतन्त्रता का गीत मुक्तकण्ठ से गाता है। यह साहित्य मनुष्य को महान मानता है और ईश्वर को मनुष्य से छोटा मानता है। मनुष्य अर्थात् महाकाव्य है। मनुष्य की भावना अर्थात् महान ऋतु है। हमारा

विश्वास है कि मनुष्य ने ही यह विश्व सुन्दर बनाया है। मनुष्य के हाथ ही प्रगति के रथ बनाते हैं। मनुष्य के श्रमशील हाथों से ही क्रान्ति जन्म लेती है। इस कारण हमें यह युग अपना लगता है। क्योंकि इस युग ने मनुष्य को मुक्ति दिलाई है।

मनुष्य को खूनी, व्यभिचारी और पापी मानने वाले लोग चींटी को महान मानते हैं। इस तुच्छता का हमें काफी अनुभव है। यह तुच्छता मनुष्य का अपमान करती है और वर्ण, जातिव्यवस्था का पुरस्कार करती है। इस विचार को पुरस्कृत करने वाले लेखक वे ही हैं जिन्होंने किसी समय तुच्छता निर्माण की थी। एक विशिष्ट वर्ग से ये आये हैं।

इस महाड़ गाँव में सन् 1927 में मनुष्य का प्रतिरोध प्रकट हुआ था। उस प्रतिरोध का किसी लेखक या कवि ने चित्रण नहीं किया है। उस प्रतिरोध से ही मुक्ति की चेतना उत्पन्न हुई थी। परन्तु एक भी पत्रिका ने इस पर कुछ भी लिखा नहीं है। 'महार माटे' कहकर जिनका गौरव किया जाता है, उस महार माटे ने भी इस सन्ताप को देखा नहीं है। गौतम बुद्ध की तरह महाड का युद्ध भी महान था, इस पर एक भी उपन्यास नहीं लिखा गया। इस प्रश्न का उत्तर खोजने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि यहाँ का लेखक हिन्दू था। वह हिन्दू होने के कारण गाँव के बाहर की दलित बस्तियों में कभी गया ही नहीं। इस सन्दर्भ में डॉ. केतकर ने कहा है कि इन विशिष्ट लोगों ने (ब्राह्ममणवादी) मात्र 'सदाशिव पेठी' साहित्य लिखा।

हिन्दुत्वादियों के आंदोलन बढ़ने लगे तब यही विशिष्ट लोग मुस्लिमों के विरुद्ध लिखने लगे थे। दूसरी ओर गाँधीवादी आंदोलन ने जोर पकड़ा। तब हिन्दू–मुस्लिम एकता का विचार सामने आया और अस्पृश्यता को समाप्त करने का आन्दोलन गति लेने लगा। तब कुछ उपन्यासों में निचले तबके के उपनायक तथा नायिकाएँ आने लगीं। 'कालाराम मन्दिर सत्याग्रह' के साथ–साथ अनेक लड़ाइयाँ अस्पृश्यों ने लड़ीं, परन्तु वह साहित्य में कभी नहीं आसका।

इस तरह का साहित्य निर्मित न होने का कारण यह था कि लेखक अनुभव लेने से डरते थे। जिस बहिष्कार से अनेक नेता घबरा गए, उसी बहिष्कार से लेखक भी शायद घबराते थे। अथवा उन पर दलित बस्ती में न जाने के बचपन के संस्कार कारणीभूत थे?

यह संस्कार ही उन्हें वहाँ जाने के लिए रोकते थे, यही सच है। इसका परिणाम यह हुआ कि मराठी में जिस पद्धति से स्त्री का चित्रण हुआ है, वह शुद्ध पारंपारिक है। दलित साहित्य ने ये सारे संस्कार फेंक दिए हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि जो बहिष्कृत थे उन्हें स्थान मिला। अब मराठी साहित्य केवल विशिष्ट सदाशिव पेठी मनुष्य का साहित्य न रह कर अनेक लोगों का साहित्य बनेगा। अनेक नये शब्द और प्रतिबिम्ब मराठी में आएँगे। इसका परिणाम यह होगा कि मराठी साहित्य अत्यधिक लोगों तक पहुँच जाएगा।

vuqokn& f'konÙkk okoGdj